Shodhshauryam, International Scientific Refereed Research Journal
© 2020 SHISRRJ | Volume 3 | Issue 3 | ISSN : 2581- 6306

महाकवि कालिदास के अभिज्ञानशाकुन्तलम् नाटकों में नीति–विषयक सन्दर्भ

डॉ0 अंजलि उपाध्याय
पी0 एच–डी0 (संस्कृत)

सारांश

''महाकवि कालिदास'' भारतीय तथा पाश्चात्य, उभयविध दृष्टियों से संस्कृत के मुकुटमणि कवि माने जाते है। नाट्य कला की सुन्दरता, काव्य की वर्णन शैली और गीतिकाव्य के रसोद्गार कालिदास की प्रतिभा की सर्वातिशयता को प्रकट करते है। **अभिज्ञानशाकुन्तलम्** महाकवि कालिदास का सबसे प्रसिद्ध नाटक है, जिसे न केवल भारतीय अपितु पूरे विश्व साहित्य में अत्यन्त गौरवपूर्ण स्थान प्राप्त है। कालिदास ने अपनी कृतियों में जिस राजनैतिक व्यवस्था का वर्णन किया है उससे ज्ञात होता है कि तात्कालिक शासन का स्वरूप राजतंत्रात्मक था। राजा का पद पूर्णतः पैतृक एवं दैवीय माना जाता था, किन्तु असीमित शक्तियों से सम्पन्न राजा निरंकुश एवं अभिमानी नहीं था। प्रजार×जन एवं उनके संरक्षण में ही राजा का यश निहित था। महाकवि ने 'शाकुन्तलम्' में राजा के कर्त्तव्य का उल्लेख करते हुए यह स्पष्ट किया है कि राजपद सुख प्राप्ति के लिए नहीं है अपितु निष्ठापूर्वक अपने उत्तरदायित्वों का निर्वाह करने के लिए है। प्रजापालन के अतिरिक्त वाह्य आक्रमण से राज्य की रक्षा करना, वर्णाश्रम धर्म की रक्षा करना, राज्य में धर्म एवं नैतिकता की स्थापना करना इत्यादि राजा के कर्त्तव्य थे। महाकवि ने अनेक स्थलों पर सेनापति, पुरोहित, अमात्य, नागरिक, गुप्तचर आदि का उल्लेख किया है। राज्य की सुरक्षा हेतु राजा के पास विशाल सेना होती थी। कालिदास ने राजनीति के विषय में जो विचार व्यक्त किये है उसके आधार पर यह कहा जा सकता है कि राजपद पूर्णतः धर्म पर आश्रित था।

मुख्य शब्द– महाकवि कालिदास, अभिज्ञानशाकुन्तलम्, नाटक, नीति–विषयक, राज्य व्यवस्था।

''महाकवि कालिदास'' भारतीय तथा पाश्चात्य, उभयविध दृष्टियों से संस्कृत के मुकुटमणि कवि माने जाते है। नाट्य कला की सुन्दरता, काव्य की वर्णन शैली और गीतिकाव्य के रसोद्गार कालिदास की प्रतिभा की सर्वातिशयता को प्रकट करते है। इतिहास की व्यापकता भावों की उदात्तता विशदता, गम्भीरता तथा शिल्पविधि का आचार्यत्व सभी दृष्टिकोण से कालिदास संस्कृत काव्य कला के सुमेरु माने जाते है।

कालिदास को काव्य एवं नाट्य प्रणयन की प्रेरणा किन कवियों एवं किन काव्य पद्धतियों से मिली, इस बात में निश्चयपूर्वक अधिक नहीं कहा जा सकता, क्योंकि कालिदास का युग विवादास्पद है किन्तु यह निश्चित है कि कवि कालिदास के प्रेरणा स्रोत राष्ट्रिय महाकाव्य 'रामायण' 'महाभारत' में निहित था। आचार्य पाणिनि को उनका पूर्वकर्ता कहा जा सकता है। सांस्कृतिक वातावरण, भाव भाषा तथा रचना विधान इत्यादि प्रत्येक क्षेत्र में कालिदास ने इन ग्रन्थों की प्रेरणा प्राप्त की।

अभिज्ञानशाकुन्तलम् महाकवि कालिदास का सबसे प्रसिद्ध नाटक है, जिसे न केवल भारतीय अपितु पूरे विश्व साहित्य में अत्यन्त गौरवपूर्ण स्थान प्राप्त है। भारतीय आलोचकों ने तो इसे नाटक–साहित्य में सर्वश्रेष्ठ बताया है– **'काव्येषु नाटकं रम्यं तत्र रम्या शकुन्तला'**। पश्चिमी विद्वानों ने भी अपनी दृष्टि से इसे अत्युत्तम नाटक माना है। ''अभिज्ञानशाकुन्तलम्'' में सात अŠ. है। जिनमें हस्तिनापुर के राजा दुष्यन्त तथा कण्वऋषि की पालिता कन्या शकुन्तला के मिलन वियोग तथा पुनर्मिलन की कथा की नाटकीय चित्रण अत्यन्त सजीवता एवं कमनीयता के साथ किया गया है। इसका कथानक महाभारत के आदिपर्व से लिया गया है।

महाकवि कालिदास के अभिज्ञानशाकुन्तलम् नाटकों में नीति–विषयक'

राजनीति के अन्तर्गत राजकीय शासन–व्यवस्था, न्याय एवं दण्ड विधान, राजतंत्र का स्वरूप, युद्ध एवं सैन्य–व्यवस्था राजा की गृह एवं पर राष्ट्र नीति आदि विषयों की विवेचना की गयी है।

राजतंत्र एवं शासन व्यवस्था–

शासन की विभिन्न प्रणालियों में कालिदास ने अपने राज्यों के शासन हेतु राजतंत्र को ही चुना है। कालिदास की शासन व्यवस्था को आजकल की राजनीतिशास्त्र की भाषा में निश्चय ही राजतंत्र कहा जायेगा। किन्तु यह भी स्पष्ट है कि कालिदास का राजतंत्र आज के राजनीतिशास्त्र के राजतंत्र से भिन्न है। यह राजतंत्र परम्परा पर आधारित होते हुए भी निरंकुश नहीं है। सम्पूर्ण राजतंत्र वर्ण और आश्रर्मों के नियमों से पूरी तरह नियमित है। राजकुमार को भी ब्रह्मचर्याश्रम में विधिवत् प्रविष्ट होकर ब्रह्मचारी के वस्त्रों को धारण एवं विद्याभ्यास करना पड़ता था।[1] साथ ही निरंकुशता तथा स्वेच्छाचारिता का विकास न हो इसलिए गुरुओं के अनुशासन में रहकर शास्त्रों का अध्ययन अनिवार्य रूप से आवश्यक था।[2] सभी सभाओं के कार्यों का नियमन धर्म भावना अथवा कर्त्तव्यभावना कराती थी। शायद इसी निरंकुशता की ओर दृष्टिपात कर महाकवि राजाओं के इस परम्परागत शासन को लोकतंत्र कहने पर मजबूर हो जाते है तथा उसे विश्राम रहित मानते है। इस लोकतंत्र तथा राजतंत्र के अपूर्व संगम वाली शासन प्रणाली में शासक की स्थिति सूर्य अथवा शेषनाग के अत्यन्त निकट है जो कार्य का प्रारम्भ कर उसकी समाप्ति तक रात–दिन अनवरत रूप से उसके पालन में संलग्न रहते है।[3]

---

1 त्वचं स मेध्यां परिधाय रौखीमंशिक्षितासु पितुरेव मंत्रवत्।
न केवलं तद्गुरुरेक पार्थिवः क्षितावं भूदेक धनुर्धरोपि सः। – रघु0 3–33

2 शास्त्रेष्वकुण्ठित बुद्धिः। रघु0 1–29 विद्यानांपारदृश्वनः। रघु0 1–23

3 भानुः सकृत् युक्त तुरंग एव रात्रिन्दिवं गन्धवहः प्रयाति।

इस राजतंत्र के अन्तर्गत एक प्रधान वैशिष्ट्य यह है कि कोई शासक सम्पूर्ण जीवन राज्य को अपना भोग्य अथवा अधिकार नहीं समझता। आजीवन एक ही व्यक्ति द्वारा राज्यभोग की स्थिति में महत्त्वाकांक्षी युवा राजकुमारों में असंतोष का जन्म होता है। फलतः राजकुलों में कलह एवं षड्यंत्र का जन्म होता है। यदि शासक वर्ग ही षड्यंत्रों से ग्रस्त रहेगा तो शासित वर्ग का कल्याण किस प्रकार होगा अतः महाकवि ने अपने राजतंत्र में यह व्यवस्था दी है जब पुत्र आवश्यक शासकीय योग्यता प्राप्त कर ले तथा अपने कुल के परम्परागत आदर्शों का पालन भलीभाँति करने लगे तो उसका प्रवेश गृहस्थाश्रम में करा देना चाहिए एवं शासक को उसे राज्यभार सौंप कर स्वयं उससे एकदम दूर हो जाना चाहिए रघुवंश के सभी शासकों ने इस विधान का पालन किया है। यही भावना 'शाकुन्तलम्' में भी व्यक्त हुई है, जिसमें प्रत्येक शासक को इस बात का आभास रहता है कि राज्य कुछ समय के लिए उत्तरदायित्व पूर्ण कर्त्तव्य है जिसका पालन धर्म भाव से करना चाहिए इसी कारणवश कालिदास ने युवराज राज्यलक्ष्मी को ऐश्वर्य भोग के लिए नहीं स्वीकार करते प्रत्युत् पिता की आज्ञा के रूप में उसका ग्रहण करते है।[4]

राजकीय–प्रशासन का मूल शान्ति और सुरक्षा में निहित था। राजा का राजदण्ड शान्ति की व्यवस्था करता था। राजा विधानानुसार दुष्टों और अपराधियों को दण्ड देकर तथा प्रजा के पारस्परिक विवादों को शान्त कर[5] राज्य में शान्ति प्रबन्ध कर प्रजा को अनीति पर चलने एवं अधर्माचरण से बचाता था। 'अभिज्ञानशाकुन्तलम्' में राजा दुष्यन्त की समुचित शासन–नीति के कारण ही प्रजा में निकृष्ट से निकृष्ट वर्ण भी कुमार्ग का अनुसरण नहीं करता है।[6]

इस प्रकार उपर्युक्त वर्णन से यह स्पष्ट हो जाता है कि महाकवि कालिदास ने जिस शासन व्यवस्था को प्राथमिकता दी है वह वंशक्रमागत राजतंत्र ही है किन्तु उसमें राजा कथमपि निरंकुश नहीं है। यह राजतंत्र शास्त्रीय नियमों से बधा हुआ है, जो किसी भी स्थिति में राजाओं को मनमानी की छूट नहीं देता तथा इस प्रणाली के शासक भी राज्य को उपभोग की वस्तु नहीं समझकर उसे कर्त्तव्य एवं धर्म समझते है।

राज्य और उसके अÁ –

यद्यपि महाकवि कालिदास ने कहीं भी राज्य का स्वरूप स्पष्ट शब्दों में नहीं किया है, तथापि उनके वर्णनों से यह सिद्ध होता है कि उस समय कई प्रकार के राज्य रहते थे। कुछ तो प्रधान राजा की अधीनता स्वीकार कर लेते थे जिसके लिए उन्हें विविध प्रकार के कर तथा धन देना पड़ता था। शक्तिशाली राज्य का शासक दिग्विजय कर अन्य राष्ट्रों से धन ग्रहण करते थे तथा पराजित राजाओं को उपहार आदि भेंट करना पड़ता था, तथा शक्तिशाली राजा की अधीनता भी।

इस प्रकार कालिदास की कृतियों में दो प्रकार के राज्य दृष्टिगत होते है– सर्वतंत्र–स्वतंत्र तथा उसके अधीन कुछ कम शक्तिशाली राज्य। यह राज्य एकांगी नहीं होता था प्रत्युत् उसके अंग भी होते थे

शेषः सदैववाहित भूमिभारः षष्ठांशवृत्तेरपि धर्म एषः।।– शाकु0 5–4

[4] तदुपस्थितमग्रहीदजः पितुराज्ञेति न भोग तृष्णया। – रघु0 8–2

[5] प्रशमयसि विवादम्– अभिज्ञानशाकुन्तलम्–5/8

[6] न कश्चिद्वर्णानामपथमपकृष्टेऽपि भजते।– अभिज्ञानशाकुन्तलम्–5–10

जिससे पूर्ण होकर राज्य की सत्ता बनती थी। कालिदास ने राज्य के अंगों के प्रतिपादन में स्पष्ट रूप से प्राचीन एवं अर्वाचीन विचारकों की भाँति ही राज्य के विभागों का विवेचन किया है तथा उनको अंग की संज्ञा दी है उनके अनुसार अÁों की संख्या सात है। सप्तांगों के सम्बन्ध में अमरकोश का विचार है कि राजा, अमात्य, मित्र, कोष, राष्ट्र, दुर्ग एवं सेना राज्य के ये सात अÁ है।[7]

इस प्रकार महाकवि कालिदास ने राज्य के सात अÁों का जो वर्णन किया है तथा अप्रत्यक्ष रूप से उन्हें राज्य स्वीकार किया है वह पूर्णतः धर्मशास्त्रीय है। क्योंकि धर्मशास्त्रों ने भी राज्य के सात अÁों को माना है, तथा उन्हीं सातों की समष्टि को राज्य रूप में स्वीकार किया है।

राजा–

महाकवि कालिदास की दृष्टि में राजा राज्य का सर्वप्रधान अंग है जिसके बिना राज्य की कल्पना भी नहीं की जा सकती। यह राजा स्वतंत्र तानाशाह न होकर अनेक कठिन दायित्वों का सागर है। महाकवि ने राजा की परिभाषा देते हुए लिखा है कि राजा वह है जो प्रजा को प्रसन्न तथा सुखी रखे।[8] कालिदास ने राजा को प्रजा के प्रत्येक व्यक्ति का वह सम्बन्धी कहा है जिससे वह नियुक्त है परन्तु पापकर्म करने वाले को नहीं।[9]

'अभिज्ञानशाकुन्तलम्' के पंचम अ¿ को कालिदास ने मानो राजा के दायित्वों एवं लोकाचारों के समीक्षार्थ ही लिखा है।

कण्व शिष्यों के आगमन का संदेश दुष्यन्त तक पहुँचाने में भीरू कंचुकी एक भी क्षण निश्चिन्त न रहने देने वाले राजदायित्वों को यादकर अथवा **"विश्रामोऽयं लोकतन्त्राधिकारः"**[10] कहता हुआ मानो स्वयं ही बेचैन हो उठा हो।

इस प्रकार स्पष्ट होता है कि यशः प्रेमी आदर्शानुरागी कालिदास के राजाओं ने शमदम के द्वारा मित एवं नियन्त्रित भोग को ही अÁीकार किया। यदि सद्विचारों की परिधि में चिन्तन किया जाय तो व्यक्ति का उत्कर्ष उसकी उत्कृष्ट भावनाओं का प्रतिफल होता है। उपलब्ध प्रमाणों के अनुसार राजाश्रयी भी महाकवि के उन्मुक्त चिन्तन और नैतिक मूल्यों की रक्षा में प्रति पग जागरूक रहकर अपने आश्रय को अपनी भावनाओं के अनुकूल बनाने में संकल्पबद्ध रहे।

राजा और प्रजा–

'अभिज्ञानशाकुन्तलम्' का वह अंश कथमपि उपेक्षित नहीं किया जा सकता जिसमें पौरव–सम्राट–दुष्यन्त के प्रजा प्रेम की अनुपम छटा का सुललित गुम्फन किया गया है। शाकुन्तलम् के पंचम

---

7 स्वाम्यमात्यसुहृत कोषराष्ट्रदुर्ग वलानि च। अमरकोश

8 तथैव सोऽभूदन्वर्थो राजा प्रकृति रंजनात्। रघु0 4–12

9 येन येन वियुज्यन्ते प्रजाः स्निग्धेन बन्धुवा।
सस पापा¿ते तासां दुष्यन्त इतिधुष्टताम्।। अभि0 6–23

10 अभिज्ञानशाकुन्तलम्– अ¿ 5

अ¿ से ज्ञात होता है कि जिस प्रकार सृष्टि के आदि से अन्त तक के लिए सूर्य के घोड़े सन्नद्ध है, जिस प्रकार वायु निरन्तर प्रवहमान रहता है तथा शेषनाग जिस प्रकार निरन्तर भू–भार धारण करता है उसी प्रकार दुष्यन्त भी प्रजा पालन रूप कार्य में संलग्न रहते है।[11] महाराज दुष्यन्त अपनी सम्पूर्ण प्रजा को पुत्रवत्– **प्रजास्यात् संततौ जाने।**

पालन करने में ही अपने कर्त्तव्य की पूर्णता समझते थे।[12] राजा दुष्यन्त अधिकार–सुख को हाथ में लिये हुए भारकारी छत्रदण्ड की तुला से अभिहित करते है।[13] सघनतम छाया वाले वृक्ष के सदृश कष्ट सहकर भी प्रजा को सुख प्रदान करते है।[14] राजा दुष्यन्त अपनी प्रजा की प्रत्येक विपत्तियों में कुटुम्बियों से अधिक सहभागी एवं रक्षक के रूप में देखे जाते है।[15]

अन्ततोगत्वा निःसन्देह यह कहा जा सकता है कि संसार का यह शाश्वत सिद्धान्त है कि यदि मानव नियति निर्दिष्ट कर्त्तव्यों का यथेष्ट पालन नहीं करता तो वह लोक तथा परलोक दोनों में निन्दित होता है। इसीलिए महाकवि कालिदास ने 'शाकुन्तल' के सप्तम अ¿ में प्रजापालन रूप कर्त्तव्य के प्रति तत्पर रहने की कामना व्यक्त की है।[16]

राजा तथा राजसभा–

राजा और राजसभा का भी अन्योन्याश्रय सम्बन्ध हुआ करता था। राजधानी में राजसभा तथा उसमें सभा–मण्डप के नियम का उल्लेख मिलता है। राजसभा का सभामण्डप मणि–संचित तथा स्तम्भ–युक्त हुआ करता था। राजा स्वकीय राजकीय–जीवनचर्या से सम्बन्धित अधिकांश कार्य यहीं पर सम्पादित किया करता था। राजा प्रतिदिन नियमित रूप से यहाँ बैठा करता था। महाकवि–कालिदास ने 'शाकुन्तलम्' नाटक के पंचम अ¿ में 'प्रत्याख्यान' के प्रसÁ में राजसभा का उल्लेख किया है। शकुन्तला का प्रत्याख्यान राजसभा में ही हुआ, क्योंकि यही न्यायालय था। राजसभा में राजा का एक देवी रूप दृष्टिगोचर होता है।

राजा एवं प्रमदवन–

प्रमदवन का निर्माण राजप्रासाद के अतिसन्निकट किन्तु जनशून्य एकान्त स्थान में होता था। राजा अपनी दिनचर्या से थककर प्रमदवन में मनोविनोदार्थ तथा विश्रामार्थ जाया करते थे, क्योंकि कभी–कभी भौतिक सुख–सुविधाओं के होने पर भी मानव–मन एकान्त में ही पूर्ण–शान्ति का अनुभव करता है। अतएव महाकवि कालिदास ने अपने नाटकों में नायकों की विरह–व्यथा से व्यथित हुआ अथवा अन्य किसी कारण से प्रमदवन से अवश्य ही सम्बद्ध दिखाया।

---

11 अभिज्ञानशाकुन्तलम्–5/4
12 अभिज्ञानशाकुन्तलम्–5/5, शा0 6/23
13 अभिज्ञानशाकुन्तलम्–5/6
14 अभिज्ञानशाकुन्तलम्–5/7
15 अभिज्ञानशाकुन्तलम्–5/8
16 अभिज्ञानशाकुन्तलम्–5/35

'शाकुन्तलम्' के षष्ठ अ¿ में प्रमदवन का स्पष्ट तथा हृदयग्राही वर्णन हुआ है। दासियों द्वारा आम्रमंजरी तोड़ने पर कंचुकी उन्हें डाँटता है तथा उत्तर स्वरूप दासियाँ कहती है कि हम लोगों को इसकी सूचना न थी कि महाराज द्वारा वसन्तोत्सव रोक दिया गया। पहली दासी कहती है कि आर्य! कुछ ही दिन हुए महाराज के साले मित्रवसु ने प्रमदवन में चित्र बनाने के लिए हम दोनों को महाराज के चरणों के पास भेजा था। इसीलिए नवागन्तुक होने के कारण हम दोनों ने इस वृत्तान्त को पहले नहीं सुना था।[17]

अमात्य या मंत्री–

राज्य के अÁों के वर्णनक्रम में दूसरा एवं प्रमुख अÁ है आमात्य। आमात्य को ही महाकवि ने मंत्री के नाम से पुकारा है तथा अनेक शास्त्रों ने भी मंत्री को ही आमात्य कहा है। राज्य के शासन में महत्त्व की दृष्टि से राजा के बाद दूसरा स्थान इसी का आता है। शुक्रनीति के अनुसार राज्यरूपी शरीर का मुख जहाँ राजा है वहीं नेत्र मंत्री है। तात्पर्य यह है कि आमात्यरूपी नेत्र से देखकर ही राजा राज्य का शासन करता है।

राज्य में सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण प्रकरण मंत्रिपरिषद् की उपस्थिति में ही निर्णीत होते है। उनका निर्णय मंत्री राजा के पास पहुँचा देता था, जिसमें राजा की सम्मति आवश्यक थी। इससे स्पष्ट होता है कि मंत्रिमण्डल नीतियों का निर्धारण कर स्वीकृति के लिए राजा के पास भेजता था। अतएव यह पूर्ण स्पष्ट हो जाता है कि मंत्रिपरिषद् राजा के विचारों को स्वीकृति प्रदान करता था, तथा राजा मंत्रि–परिषद के विचारों को। राजा की अनुपस्थिति में राज्य का सम्पूर्ण शासनतंत्र मंत्रियों के द्वारा ही संचालित होता था। 'अभिज्ञानशाकुन्तलम्' नाटक में दुष्यन्त अपने मित्र इन्द्र के सहायतार्थ स्वर्ग जाते समय अपने मंत्री पिशुन को राज्य भार दे गये।[18]

इस प्रकार यह स्पष्ट हो जाता है कि कालिदास की शासन व्यवस्था में मंत्रि–परिषद् का महत्त्वपूर्ण स्थान है। राजा की अनुपस्थिति में राजा के सारे कार्यों की देख–रेख उसकी स्थिति में उसकी सुविधा हेतु नीति निर्धारण तथा राज्याभिषेक अनेक कार्य मंत्रि–परिषद् के द्वारा सम्पन्न किये जाते थे। राजा की अनुपस्थिति में शासनसूत्र का पूर्ण संचालन मंत्रियों के द्वारा किया जाना धर्मशास्त्रों को भी अभिप्रेत है।

मित्र–

मनु आदि धर्मशास्त्रकारों ने राज्य के सात अÁों में मित्र की गणना करते हुए उसे राज्य का कर्ण माना है। निश्चय ही कर्ण का जो महत्त्वपूर्ण स्थान शरीर के लिये है वही स्थिति राज्य के लिए मित्र की है। धर्मशास्त्रकारां के द्वारा प्रतिपादित मित्र सम्बन्धी विचार महाकवि कालिदास को स्वीकार है।

---

[17] आर्य, कति दिवसान्यवयोर्मित्रावसुना राष्ट्रियेण भट्टिनीपादमूलं प्रेषितयोः। इत्थं च नौ प्रमदवनस्य पालनकर्म समर्पितम्। तदागन्तुकतयाऽश्रुतपूर्व आवाभ्यामेष वृतान्तः।– अभिज्ञानशाकुन्तलम्–षष्ठ अ¿, पृ0 326

[18] तदत्रपरिगतार्थकृत्वा मद्वचनादमात्यपिशुनं ब्रूहि–
त्वन्मतिः केवलया तावत् परिपालयतु प्रजाः।
अधिज्यमिदमन्यस्मिन् कर्माणि व्यापृतं धनुः।। शाकुन्तलम् 6–32

'अभिज्ञानशाकुन्तलम्' के षष्ठांक में दुष्यन्त एवं इन्द्र की मित्रता तथा दुष्यन्त का मित्रतापूर्ण आचरण मित्र के महत्त्व को प्रकाशित करता है। यहाँ मातलि का कथन है ''हे राजन! तुम्हारे मित्र शतक्रतु से कालनेमि अवध्य है, जिसका वध करने में तुम पूर्णतः समर्थ हो।[19] और अपने मित्र की पुकार सुनते ही दुष्यन्त तत्क्षण राज्यभार मंत्री को सौंप देते हैं तथा मित्र के सहायतार्थ प्रस्थान कर जाते है।

राष्ट्र–

महाकवि कालिदास ने यद्यपि राष्ट्र शब्द का उल्लेख साक्षात् नहीं किया है किन्तु संक्षिप्त सन्दर्भों के माध्यम से ही राष्ट्र के स्वरूप को प्रत्यक्ष सा कर दिया है। कालिदास ने रघु दिलीप आदि रघुवंशी राजाओं के राज्यों में एकमात्र राजधानी किन्तु अनेक जनपदों व राष्ट्रों का उल्लेख हुआ है।[20] रघु के दिग्विजय क्रम में जिन–जिन राज्यों का उल्लेख हुआ है वह निश्चय ही स्वतंत्र राज्य थे, जिन पर आधिपत्य हेतु रघु को दिग्विजय यात्रा करनी पड़ी किन्तु उनकी अधीनता स्वीकार कर ये राज्य उनके राज्य के राष्ट्र बन गये थे। ये राष्ट्र थे सुह्य, वंग, उत्पन्न, कलिंग आदि। अन्य स्थलों पर महाकवि ने मगध, अंग, अवन्ति, अनूप, सुरसेन, पाण्ड्य, विदर्भ एवं एवं कोशल आदि राज्य की राजधानी एवं राष्ट्रों का वर्णन किया है।

इस प्रकार यह स्पष्ट हो जाता है कि राज्य के विभाजित राजधानी एवं अवशिष्ट दो भागों में दूसरा अर्थात् राजधानी से भिन्न भाग ही राष्ट्र है।

पुर अथवा दुर्ग–

राज्य के सप्ताÁीं में पुर अथवा दुर्ग का भी महत्त्वपूर्ण स्थान है। पुर या दुर्ग का तात्पर्य राज्य के उस प्रधान नगर से है, जो राजकीय शासन का प्रधान केन्द्र अर्थात् राजधानी था। कालिदास ने राजधानी से दुर्ग दोनों का वर्णन किया है राजधानी का दूसरा नाम मूल, जो राज्य का मुख्य नगर था, और उसका शासन राजा की प्रत्यक्षता में होता था। इसी नगर में राजा प्रतिदिन राजकीय न्यायाधिकरण की बैठक बुलाता था तथा राज्य के नागरिकों के मामले का निर्णय करता था। राजधानी में ही न्यायाधिकरण तथा मंत्रिपरिषद् का स्तिंत्व यह सिद्ध करता है कि सभी विभागों के प्रधानों का निवास स्थान भी यही था। राजा जब कभी राजधानी को छोड़ता तब विशेष सैन्य की सुरक्षा कर देता था। इसके चौड़ी खाई से घिरे होने की बात भी महाकवि कहते है।[21]

इस प्रकार महाकवि कालिदास को पुर तथा उसके दुर्ग रूप का वर्णन अभिप्रेत है, जिसकी अत्यधिक आवश्यकता राज्य के शासन तथा सुरक्षा के लिए है।

कोष–

महाकवि कालिदास ने राज्य के अÁीं में कोष को प्रधानता दी है।

---

[19] सख्युस्ते स किल शतक्रतोखध्यः तस्य त्वं रणशिरसि स्मृतो निहन्ता।– शाकुन्तलम् 6–30

[20] रघु0 4–34, 5–9, 9–4, 15–42

[21] एकः कृत्स्नां नगरपरिधं प्रांशुवाहु र्भुनक्ति। शाकुन्तलम् 2–16

कोष का महत्त्व एवं उद्देश्य प्रतिपादित करने के साथ–साथ महाकवि ने कोष की अभिवृद्धि के साधनों का भी यथास्थान वर्णन किया है। राजा अनेक प्रकार से नियमपूर्वक कोष का संग्रह करता था, जिनमें विजय उपहार एवं अनधिकृत सम्पत्ति प्रमुख है। इन्हीं साधनों के द्वारा राजा धन एकत्र कर अपने कोष को समृद्ध करता था।

भूकर–

राजा प्रजा के धन एवं प्राण की रक्षा करता था। फलस्वरूप अपने इस रक्षारूपी कर्त्तव्य के बदले प्रजा से उसकी भूमि के उपज का छठा भाग ग्रहण करता था जिसका विवरण अभिज्ञान शाकुन्तलम् के छठे अ¿ में मिलता है। राजा दुष्यन्त अपनी प्रजा से अपने रक्षा कार्य के बदले उनकी उपज का षष्ठांश लिया करते थे।[22] विघ्नों से तप तथा लुटेरे से धन की रक्षा करने वाले राजा को सभी आश्रम एवं वर्णों के व्यक्ति अपनी योग्यतानुसार प्राप्ति का छठा भाग स्वयमेव अर्पित कर देते थे। महाकवि कालिदास इस षष्ठांश कर को राजा के जीवन निर्वाह का साधन मानते है और इसे वृत्ति कहकर पुकारते है उनकी दृष्टि में यह माध्यम आय के साधनों में प्रधान था, तथा इसके नियम भी कठोर थे। इस व्यवस्था से तपस्वीगण भी मुक्त नहीं थे, क्योंकि उनको भी विघ्नरहित तप में राजा की सहायता के लिए अपनी तपस्या का छठा भाग अर्पित करना पड़ता था, जो सर्वथा नाश रहित था।[23] अपनी तपस्या के अतिरिक्त ये तपस्वी अपने द्वारा संग्रहित चावल का छठा भाग नदी के किनारे एकत्र करते थे, जिसे राजकीय अधिकारी ले जाते थे।[24] तपस्वी अपने अन्न के संग्रह का छठा भाग यह सोचकर दिया करते थे कि राजा हमारी रक्षा करता है अतः उसे कर देना चाहिए।[25]

इस प्रकार उपर्युक्त विषय यह स्पष्ट करते है कि कालिदास के द्वारा प्रयुक्त षष्ठांश भू–कर प्राचीनकाल से ही धर्मशास्त्रकारों द्वारा अनुमोदित रहा है।

राजकीय एकाधिकार–

मदिरालयों से राजकीय कोष के लिये प्राप्त होने वाले कर की सम्भावना से भी इन्कार नहीं किया जा सकता। यद्यपि महाकवि ने ऐसे करो का स्पष्ट उल्लेख नहीं किया है, किन्तु उनके द्वारा प्रचुर मदिरालयों का विवरण सिद्ध करता है कि अवश्यमेव में राजकर आय के साधन थे तभी तो इन्हें राजकीय संरक्षण प्राप्त था। सेतु निर्माण जल संतरण पशुपालन एवं गज ग्रहण आदि मुख्य राजकीय एकाधिकारों से राजकोष को प्रचुर आय होती थी, जिसका विवरण महाकवि के कृतियों में प्राप्त होता है।

खनिज–

---

[22] भानुः सकृद् युक्त तुरंग एवं रात्रिन्दिवं गन्धवहः प्रयाति।
शेषः सदैव वाहित भूमिभारः षष्ठांश वृत्तेरपि धर्म एषः।। शाकु0 5–4

[23] शाकुन्तलम्– अ¿ 2

[24] (क) नीवार षष्ठभागमस्माकमुहरन्विति। शाकु0 अ¿ 2
(ख) तान्युंछषष्ठांकित सैकतानि। रघु0 5–8

[25] अन्यद्भागधेयमेतेषां रक्षये निपतति। शाकुन्तलम्, द्वितीय अ¿ 1

पर्याप्त विस्तारपूर्वक खोदी गई खानों से निकाले गये विविध खनिज द्रव्य भी राजकीय आय के प्रधानभूत साधन थे।

वाणिज्य कर–

कालिदास के समय में स्थल तथा सामुद्रिक मार्ग से व्यापार तथा वाणिज्य किये जाने के प्रचुर संकेत मिलते है। सार्थवाह[26] में बड़े–बड़े व्यापारी अपने राजा को प्रचुर धन दिया करते थे जिनकी रक्षा में वाणिज्य पथ सुरक्षित रहता था, और देश के सम्पूर्ण भाग में व्यापार स्वच्छन्द एवं निरापद था। भेंट एवं पण्य के द्वारा वणिक् राजकोष में धन प्रवाहित किया करते थे। व्यापार वस्तुओं पर लगाये गये कर को यद्यपि कालिदास ने कहीं स्पष्ट नहीं किया है, तथापि उनका मत है कि वणिकों से राजा को प्रभूत धन की प्राप्ति होती थी।

विजय–

राजा अपने विजय के द्वारा पराभूत राजाओं से अपरा सम्पत्ति प्राप्त करता था। पराजीत राजा से विजयी राजा को अश्वगज, सुवर्ण राशि मणिमाणिक्य आदि बहुमूल्य उपहार प्राप्त होते थे।

अनधिकृत सम्पत्ति का राजकीयकरण–

राजकीय आय का प्रधान भूत साधन था– उत्तराधिकारी के अभाव में वर्तमान अनिधिकृत सम्पत्ति का राजकीयकरण। ऐसी सम्पत्ति राजकीय कोष में ग्रहण कर ली जाती थी, जिसका कोई भी उत्तराधिकारी नहीं होता था। इसका विवरण 'शाकुन्तल' के चतुर्थ अ¿ में प्राप्त होता है, जहाँ सम्बन्धित विभाग का मंत्री सार्थवाह सम्पत्ति का ऐसा विवरण पत्र राजा के समक्ष अवलोकनार्थ प्रस्तुत करता है, जिसमें ऐसी सम्पत्ति को राजकीय कोष में सम्मिलित करने को कही गयी है।[27]

दण्ड–

दण्ड–विधान मानव–धर्म पर आधारित था। न्यायाधीश मनु निर्दिष्ट दण्ड–नियमों के अनुसार ही दण्ड का विधान करते थे। अपराधी के लिए दण्ड के नियमों की धाराएँ अत्यन्त कठोर थी। अपराधी को कठोर से कठोर सजा दी जाती थी। दण्ड विधान के अनुसार रत्नों की चोरी के अपराध का दण्ड मृत्यु था।[28] मृत्यु–दण्ड से दण्डित व्यक्ति को शूली पर चढ़ाना, गृध्र–बलि बनाकर मरवाना[29] आदि प्राणापहारक दण्ड–विधियाँ प्रचलित थी। जिसका विवरण अभिज्ञानशाकुन्तलम् के षष्ठ अ¿ में किया गया है।

साम्राज्य रक्षा–

साम्राज्य रक्षा के लिए राजा सचेत रहते थे। साम्राज्य की सुदृढ़ता एवं स्थिरता के लिए राजा की ओर से राज्य की आन्तरिक एवं बाह्य सुरक्षा की व्यवस्था की जाती थी। सुरक्षा के साधनों में सेना, नगर–रक्षक एवं गुप्तचर प्रमुख थे।

---

[26] रघु0 17–64 एवं अभिज्ञानशाकुन्तलम् अंक 6

[27] शाकुन्तल, अ¿ 5

[28] एष यम सदनं प्रविश्य प्रतिनिवृत्तः। अभिज्ञानशाकुन्तलम्, षष्ठम अ¿, पृ0 200

[29] गृध्रबलिर्भविष्यसि। – अभिज्ञानशाकुन्तलम्, षष्ठम अ¿, पृ0 99

सेना–व्यवस्था –

राज्य के समुचित शासन अर्थात् राज्य के शान्ति व्यवथा की स्थापना तथा वाह्य आक्रमणों से राज्य की रक्षा हेतु समृद्ध सैन्य शक्ति की आवश्यकता होती है। सैन्य शक्ति के इस सर्वाधिक महत्त्व को देखते हुए ही राजधर्म के प्रतिपादकों ने सेना को राज्य के सप्तांगों में उचित स्थान देते हुए इसे राज्य की बुद्धि माना है।

कालिदास के नाटकों में नौका[30] के उल्लेख से जल–सैन्य का सहज ही अनुमान किया जा सकता है। सुविधा की दृष्टि से सम्पूर्ण सेना को छोटे–छोटे समूहों में विभक्त कर दिया जाता था, और सैनिकों की गणना के लिए एक पुस्तक या सूची बना ली जाती थी।[31] सेना का अधिपति सेनापति या बलाध्यक्ष[32] कहलाता था। वह सैनिकों की नियुक्ति करता था और समर अभियान के लिए सेना को तैयार करता था।[33]

सैन्य–सज्जा –

सैनिक वेशभूषा सैन्य सज्जा का प्रमुख अंग था। शस्त्रास्त्रों में तलवार, ढाल और कुलिश[34] आदि का निरूपण हुआ है। सैन्य– सज्जा में ध्वजाएँ और रण–वाद्य भी समाविष्ट थे। ध्वजाएँ पताकाएँ राज– चिन्ह और सैनिक–चिन्ह के रूप में प्रयुक्त होती थी। राजाओं और सेना–नायकों का अपना–अपना विशिष्ट ध्वज–चिन्ह होता था। युद्ध में पताका सबसे आगे फहराती हुई चलती थी।[35] शत्रु–पक्ष द्वारा ध्वजा का विद्ध होना पराजय का लक्षण माना जाता था और उसके लिए शान्ति–कर्म किया जाता था।

नगर–रक्षक –

राज्य की आन्तरिक सुव्यवस्था एवं शान्ति के लिए नगर की सुरक्षा अनिवार्य थी। नगर–रक्षकों को आधुनिक पुलिस–कर्मचारियों का ही एक रूप माना जा सकता है। ये रक्षक–गण चोर, डाकू या अन्य अपराधी को राजा के समक्ष उपस्थित करते थे, और उसे अपराध की लघुता–गुरुता के अनुकूल दण्ड दिलवाते थे। 'अभिज्ञानशाकुन्तलम्' में रक्षक–गण धीवर को राजा की अँगूठी चुराने के अपराध के कारण राजा समक्ष ले जाते है।[36] नगर–रक्षकों का अधिपति 'नागरिक'[37] कहलाता था। नागरिक का अधिकार प्रायः राजश्यालक को प्राप्त होता था।[38]

इस प्रकार राज्य की सुरक्षा बनाये रखने के लिए नगर–रक्षकों की महत्त्वपूर्ण आवश्यकता थी।

निष्कर्ष–

---

30 नौ व्यसने विपन्नः। – अभिज्ञानशाकुन्तलम्, षष्ठम अ¿, पृ0 121

31 क्रमान्निवेश्यमानासु सेनासु वन्दिपरिग्रहेषुपरीद यामणेषु पुस्तक प्रामाणात्।
कुताश्चिदप्यविज्ञायमानौ द्वौ वनौकसौगृहीतौ। – अभिज्ञानशाकुन्तलम्, चतुर्थ अ¿, पृ0 82

32 अभिज्ञानशाकुन्तलम्– चतुर्थ अ¿, पृ0 67

33 भो भो बलाध्यक्ष। सन्नाहमाज्ञापयवानरवाहिनीम्। – अभिज्ञानशाकुन्तलम्, चतुर्थ अ¿, पृ0 67

34 अभिज्ञानशाकुन्तलम्–7/26

35 अभिज्ञानशाकुन्तलम्–1/32

36 अंगुलीयक दर्शनमस्य विमर्शयितव्यम्। राजकुलमेव गच्छामः।– अभि0 षष्ठम् अ¿, पृ0 18

37 ततः प्रविशति नागरिकः श्यालः पश्चाद्धद्धपुरुषमादाय रक्षिणौ च।– अभिज्ञानशाकुन्तलम्, षष्ठम अ¿, पृ0 97

38 अभिज्ञानशाकुन्लतम्, षष्ठम अ¿, पृ0 97

कालिदास ने अपनी कृतियों में जिस राजनैतिक व्यवस्था का वर्णन किया है उससे ज्ञात होता है कि तात्कालिक शासन का स्वरूप राजतंत्रात्मक था। राजा का पद पूर्णतः पैतृक एवं दैवीय माना जाता था, किन्तु असीमित शक्तियों से सम्पन्न राजा निरंकुश एवं अभिमानी नहीं था। प्रजार×जन एवं उनके संरक्षण में ही राजा का यश निहित था। महाकवि ने 'शाकुन्तलम्' में राजा के कर्त्तव्य का उल्लेख करते हुए यह स्पष्ट किया है कि राजपद सुख प्राप्ति के लिए नहीं है अपितु निष्ठापूर्वक अपने उत्तरदायित्वों का निर्वाह करने के लिए है। प्रजापालन के अतिरिक्त वाह्य आक्रमण से राज्य की रक्षा करना, वर्णाश्रम धर्म की रक्षा करना, राज्य में धर्म एवं नैतिकता की स्थापना करना इत्यादि राजा के कर्त्तव्य थे। राज्य की शासन–व्यवस्था सुचारू रूप से संचालित हो सके इसके लिए मन्त्रिमण्डल होता था। महाकवि ने अनेक स्थलों पर सेनापति, पुरोहित, अमात्य, नागरिक, गुप्तचर आदि का उल्लेख किया है। राज्य की सुरक्षा हेतु राजा के पास विशाल सेना होती थी। कालिदास ने राजनीति के विषय में जो विचार व्यक्त किये है उसके आधार पर यह कहा जा सकता है कि राजपद पूर्णतः धर्म पर आश्रित था। राजा का यह कर्त्तव्य था कि वे अपने पुत्र का राज्याभिषेक करके पत्नी सहित जंगल में निवास करें। इस प्रकार राजपद भोग के लिए न होकर प्रजा–रंजन के लिए था।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

- कालिदास का चिन्तन एवं अनुभूतियाँ– डॉ0 अच्युतानन्द घिलिडयाल, भारतीय प्राच्य विद्या शेध संस्थान, वाराणसी।
- कालिदास– अपनी बात– भारतीाय दृष्टि– रेवा प्रसाद द्विवेदी, सनातन, कालिदास संस्थान, 28 महामनापुरी, वाराणसी।
- अभिज्ञानशाकुन्तलम्– कालिदास, डॉ0 कपिलदेव द्विवेदी टीका, साहित्य संस्थान प्रकाशन, वाराणसी, 1976
- आधुनिक संस्कृत नाटक– रामजी उपाध्याय, संस्कृत परिषद्, सागर विश्वविद्यालय, सागर, 1977
- मध्यकालीन संस्कृत नाटक– रामजी उपाध्याय, संस्कृत परिषद् सागर विश्वविद्यालय, सागर, 1977
- लोक–संस्कृति की रूपरेखा– डॉ0 कृष्णदेव उपाध्याय, लोक भारती प्रकाशन, इलाहाबाद, 1988
- कालिदास ग्रन्थावली– सीताराम चतुर्वेदी, भारत प्रकाशन मन्दिर, अलीगढ़, तृतीय संस्करण, संवत् 2019